दैनिक जागरण

Date:19-09-22

सिविल सेवा में उठते प्रश्न

डा. विजय अग्रवाल, (लेखक पूर्व प्रशासनिक अधिकारी हैं)

इन दिनों संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) की ओर से आयोजित की जाने वाली सिविल सेवा की मुख्य परीक्षा हो रही है। यह 25 सितंबर तक चलने वाली है। यह परीक्षा तीन चरणों में होती है-प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार। इस अवसर पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि पिछले वर्ष की प्रारंभिक परीक्षा का कट आफ मार्क्स 43.77 प्रतिशत रहा था। ध्यान देने की बात यह है कि 2016 में यह 58 प्रतिशत था, जो क्रमशः गिरते-गिरते इस दयनीय दशा को प्राप्त कर चुका है। इस वर्ष इसमें और भी गिरावट आने की आशंका है। पांच जून को हुई प्रारंभिक परीक्षा यदि सामान्य रूप से हुई होती तो कोई बात नहीं थी, लेकिन इस बार की परीक्षा में जिस तरह के अनसुने, अनजाने और अनपढ़े प्रश्नों का ढेर लगा दिया गया, उसने परीक्षार्थियों को बेहद निराश किया। पूछे गए प्रश्नों को देखकर इन्हें समझ में ही नहीं आ रहा था कि वे अगले वर्ष की तैयारी कैसे करें? वे बुरी तरह भ्रमित हुए।

प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम की घोषणा से पता चला कि लगभग एक हजार पदों के लिए करीब 13 हजार उम्मीदवारों का चयन होना था, जो हुआ, लेकिन परिणाम आने के बाद अफरातफरी इस बात को लेकर मची कि बड़े-बड़े दिग्गज धराशायी हो गए। यह स्थिति प्रारंभिक परीक्षा के बारे में कुछ मूलभूत एवं अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े करती है। पहला और सामान्य सा प्रश्न तो यही है कि क्या देश की इतनी प्रतिष्ठित उच्च स्तरीय प्रतियोगी परीक्षा का इतना कम कट आफ मार्क्स आना सम्मानजनक है? यह हास्यास्पद बात है कि इसी परीक्षा के सामान्य अध्ययन के द्वितीय प्रश्न पत्र को मात्र क्वालीफाई करना पड़ता है, जो सीसैट के नाम से अधिक जाना जाता है और ऐसा करने के लिए 33 प्रतिशत अंक की जरूरत होती है।दूसरे प्रश्न के रूप में यह बात आती है कि क्या यह गिरावट इस परीक्षा में बैठने वाले युवाओं के गिरते हुए शैक्षणिक एवं प्रतिभा के स्तर के कारण है? यदि ऐसा है, तब तो यह अत्यंत चिंताजनक है। कोई भी राष्ट्र चाहेगा कि उसके सर्वोच्च स्तरीय प्रशासन में देश की अच्छी से अच्छी प्रतिभाएं आएं। इसलिए इन सेवाओं को इतना आकर्षक एवं प्रतिष्ठापूर्ण बनाया जाता है। यदि हम ऐसा नहीं कर पा रहे हैं तो हमें अपनी प्रणाली पर पूरी गंभीरता से विचार करना होगा, लेकिन एक अच्छी बात यह है कि ऐसा है नहीं। इसके प्रमाण के तौर पर मुख्य परीक्षा के कट आफ मार्क्स को देखा जा सकता है, जिसे प्रतिभा का संपूर्ण एवं वास्तविक परीक्षण करने वाली परीक्षा माना जाता है। 2016 में साक्षात्कार में जाने के लिए न्यूनतम 787 अंकों की जरूरत थी। यह पिछले वर्ष की परीक्षा में 745 (कुल अंक 1750) रही। 2016 में साक्षात्कार के अंकों को जोड़ने के बाद चयन के लिए न्यूनतम अंक थे-988, जो पिछले साल 944 रहे।

साक्षात्कार 275 अंकों का होता है। ये आंकड़े बताते हैं कि यदि प्रतिभा में गिरावट आई होती तो उसका प्रभाव मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार, इन दोनों पर पड़ता।

आखिर प्रारंभिक परीक्षा के अंकों में इतनी कमी क्यों है? इसका उत्तर बहुत साफ है और वह यह कि पिछले कुछ वर्षों से सामान्य अध्ययन के रूप में जिस तरह के उलटे-पुलटे और कठिन प्रश्न पूछे जा रहे हैं, वे सामान्य न होकर विशेष से भी विशेष हो गए हैं। उदाहरण के रूप में इस वर्ष 2018 में अफ्रीका की एक शरणार्थी बस्ती बीडीबीडी के बारे में पूछा गया। जिन चार ग्रंथों में से जैन ग्रंथों का चयन करना था, उनके नाम थे- नेतिपकरण, परिशिष्टपर्वन, अवदानशतक और त्रिशिष्टलक्षण महापुराण। चाड, गिनी, लेबनान और ट्यूनीशिया की घटनाओं पर प्रश्न था। मध्यकालीन भारत से एक प्रश्न था कि कौन कुलाह-दान कहलाते हैं? चाय बोर्ड के विदेश में कहां-कहां कार्यालय हैं? प्रभाजी कक्षीय बमबारी प्रणाली क्या है? ऐसे अनेक प्रश्न हैं। यह पाया गया है कि इस बार के कुल सौ प्रश्नों में लगभग 55 प्रश्न अत्यंत कठिन श्रेणी के हैं। बहुत से प्रश्न तो ऐसे हैं कि उनके उत्तर के रूप में दिए गए विकल्पों के समूहों से भी सही उत्तर तक पहुंचने का कोई सूत्र नहीं मिलता। अधिकांश पूछे गए तथ्य भी ऐसे होते हैं कि उनका ज्ञान या सिविल सेवा के करियर से कोई संबद्धता नहीं होती।प्रारंभिक परीक्षा के साथ एक दिक्कत यह भी है कि न तो इसका पाठ्यक्रम बहुत स्पष्ट है, और न ही इसके ज्ञान का स्तर। हालांकि यूपीएससी ने मुख्य परीक्षा के लिए इन दोनों का स्पष्ट प्रविधान किया हुआ है, लेकिन इस प्रारंभिक परीक्षा के लिए नहीं। यदि हम व्यावहारिक रूप में मुख्य परीक्षा के निर्देशों को प्रारंभिक परीक्षा के लिए मानकर चलें तो फिलहाल वह सुसंगत नहीं दिख रहा है।

मुख्य परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के बारे में आयोग ने कहा है कि 'प्रश्न ऐसे होंगे कि कोई भी सुशिक्षित व्यक्ति बिना किसी विशेष अध्ययन के इनका उत्तर दे सके।' सामान्य अध्ययन का सामान्य और एकमात्र अर्थ भी यही होता है, लेकिन प्रारंभिक परीक्षा में यह बात दिखाई नहीं देती। यही कारण है कि इसमें अंकों का प्रतिशत लगातार कम होता जा रहा है। जबकि मुख्य परीक्षा के अंतिम परिणाम के अंकों में एक प्रकार की स्थिरता बनी हुई है, सिवाय 2013 की मुख्य परीक्षा के। यूपीएससी को चाहिए कि वह इस स्थिति पर पूरी संवेदनशीलता के साथ विचार करके इसे प्रतियोगियों के स्तर के अनुकूल बनाए, ताकि एक तार्किक एवं व्यवस्थित रूप से उनका मानसिक परीक्षण हो सके। वर्तमान के 'बौद्धिक अन्याय' को उसे दूर करना ही चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:19-09-22

कूटनीति का अहम चरण

संपादकीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में उज्बेकिस्तान में संपन्न शांघाई सहयोग संगठन (एससीओ) से इतर एक मुलाकात में रूस के राष्ट्रपति व्लादीमिर पुतिन के समक्ष यूक्रेन पर हमले की जो सीधी सपाट आलोचना की, उसके लिए पश्चिमी देशों ने उनकी जमकर सराहना की। इतना ही नहीं भारत ने संयुक्त राष्ट्र में भी इस बात

के पक्ष में मत दिया कि यूक्रेन के राष्ट्रपति वोलोदीमिर जेलेंस्की को अगले सप्ताह संयुक्त राष्ट्र महा सभा को संबोधित करने दिया जाए।भारत का यह रुख फरवरी की स्थिति से एकदम अलग है जब ऐसा लगा था कि भारत सैन्य गतिविधियों को मान्यता दे रहा है। इसके साथ ही इससे यह भी पता चलता है कि भारत भूराजनीतिक हकीकतों के अनुसार अपनी कूटनीति में बदलाव लाने की क्षमता भी रखता है।आने वाले वर्ष में इस लचीलेपन की परीक्षा उस समय होगी जब भारत आठ देशों के समूह की अध्यक्षता और अगले वर्ष सितंबर में शिखर बैठक की मेजबानी करेगा। इस स्थिति को लेकर सवाल भी किए जाएंगे क्योंकि चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ के बीच होने वाली द्विपक्षीय वार्ता नहीं हो सकी।

ये घटनाएं दो पड़ोसी देशों के साथ रिश्तों के बारे में काफी कुछ बता सकती हैं लेकिन उनका श्रेय भारत की जांची परखी आकांक्षाओं को भी दिया जा सकता है जिसके तहत वह एससीओ के तहत अपने बहुपक्षीय लक्ष्यों को चीन और पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय मुद्दों की तुलना में अलग रखना चाहता है।

उस लिहाज से देखा जाए तो एससीओ की सदस्यता भारत के लिए कई लाभ लेकर आई है। पहली बात, इसकी मदद से मध्य एशिया के साथ संवाद का मंच मिला है जो अफगानिस्तान और पाकिस्तान के घटनाक्रम को देखते हुए सुरक्षा हालात की निगरानी की दृष्टि से अहम है। यह भारत को सक्षम बनाता है कि वह इस संवेदनशील क्षेत्र को लेकर एक सहज नीति का पालन करे जो एकपक्षीय होने के बजाय एससीओ द्वारा शुरू की गई प्रक्रिया का हिस्सा हो।

हालिया इतिहास भी यह बताता है कि भारत में यह क्षमता है कि वह चीन के दबदबे वाले इस क्षेत्र में अहम संतुलनकारी भूमिका निभा सके। वास्तव में यही प्रमुख वजह थी जिसके चलते 2017 में रूस ने भारत की सदस्यता का समर्थन किया था।इसकी कीमत चीन द्वारा पाकिस्तान की सदस्यता के समर्थन के रूप में चुकानी पड़ी थी। निश्चित रूप से रूस और चीन की साझेदारी की बदलती प्रकृति आगे चलकर इस गणित को बदल सकती है। इसके साथ ही भारत की निरंतर सदस्यता से उसे कुछ हद तक भूराजनीतिक 'गुटनिरपेक्षता' हासिल करने में मदद मिलेगी क्योंकि क्वाड के जरिये उसके अमेरिका के साथ करीबी रिश्तों की भी धारणा बनी हुई है।आखिर में इससे कुछ अहम आर्थिक लाभ भी निकलते हैं। प्रधानमंत्री ने एससीओ में मध्य एशिया के साथ करीबी संपर्क की बात कही। ईरान में चाबहार बंदरगाह के जरिये इन्हें विकसित किया जा सकता है जिसमें भारत ने भारी निवेश किया है। इसका विस्तार क्षेत्रीय वाणिज्यिक आवागमन केंद्र के रूप में किया जा सकता है। लंबे समय से लंबित तुर्कमेनिस्तान-अफगानिस्तान-पाकिस्तान-भारत गैस पाइपलाइन को लेकर भी बातचीत दोबारा शुरू हुई है। उससे भी मदद मिल सकती है।

कुल मिलाकर अगले 18 महीने का समय भारत की कूटनीति के लिए अहम हो सकता है। एससीओ की अध्यक्षता भी भारत के लिए एक बड़े अंतरराष्ट्रीय फलक का हिस्सा होगी। इस वर्ष के अंत में भारत जी 20 का भी अध्यक्ष बन जाएगा और अगले वर्ष अक्टूबर में शिखर बैठक की मेजबानी करेगा। ऐसे में भारत के लिए एक चुनौती यह भी होगी कि वह जी 20 देशों के व्यापक आर्थिक और सुरक्षा लक्ष्यों तथा एससीओ की संकीर्ण चिंताओं के बीच एक सुसंगत रिश्ता कायम करे। दोनों मंचों में घट रही घटनाओं का बड़ा हिस्सा रूस-यूक्रेन युद्ध के हालात पर भी निर्भर करेगा। भारत को कूटनीतिक दृष्टि से बहुत सजग रहना होगा ताकि अहम वैश्विक देश के रूप में उसकी आकांक्षाएं रेखांकित हों।

Date:19-09-22

चुनावी चंदे की विकृति में सुधार का है अवसर

शेखर गुप्ता

सर्वोच्च न्यायालय के पास देश की चुनावी चंदे की खराब व्यवस्था को सुधारने का एक और अवसर है। यह उसके लिए भूल सुधार का एक मौका भी है। हर प्रकार के राजनीतिक भ्रष्टाचार की जड़ में चुनावी चंदा है। इसकी शुरुआत 1952 में पहले आम चुनाव के समय हुई थी। बीते 65 वर्षों में भारतीयों की तीन सबसे समझदार पीढ़ियां भी इसका तोड़ निकालने में विफल रहीं।

आखिरकार 1 अप्रैल, 2017 को केंद्रीय बजट ने इसे वैधानिक बना दिया। इसके बाद पांच अहम वर्षों के दौरान एक नई राष्ट्रीय और दो दर्जन से अधिक राज्यों की सरकारें चुनी गईं, गिरीं या दोबारा चुनी गईं लेकिन यह व्यवस्था वैसी ही बनी रही।

अब मोदी सरकार द्वारा 2017-18 के बजट में की गई गोपनीय चुनावी बॉन्ड की व्यवस्था को दी गई चुनौती को आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय ने सुनवाई के लिए चुन लिया है। अप्रैल 2019 के आरंभ में सर्वोच्च न्यायालय के तीन सदस्यों वाले उच्चाधिकार प्राप्त पीठ ने एक अंतरिम आदेश पारित किया था। पीठ में तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई, दीपक गुप्ता और संजीव खन्ना शामिल थे।उक्त आदेश अत्यधिक कमजोर और लचर प्रकृति का था। शीर्ष न्यायालय पर कोई भी प्रश्न उठाते हुए हमें अपने शब्द चयन में खासी सावधानी बरतनी होती है लेकिन इस मामले में तो खासतौर पर ऐसा करना होगा। क्योंकि अंतरिम आदेश से ऐसा लगा कि इस मामले को लंबे समय के लिए लंबित किया जा रहा है। उस बात को साढ़े तीन वर्ष का समय और तीन मुख्य न्यायाधीशों का कार्यकाल तो पहले ही बीत चुका है। संभावना यही है कि जब तक यह सुनवाई जोर पकड़ेगी तब तक पांचवें मुख्य न्यायाधीश का कार्यकाल आ जाएगा।

अदालतों से मिलने वाली तारीखों का अंतहीन सिलसिला पहले ही हमें परेशान करता आया है। इसने बॉलीवुड की फिल्मों को भी खूब मसाला दिया है। सनी देओल की 1993 में आई फिल्म दामिनी के संवाद 'तारीख पे तारीख' को तो अब हमारे शीर्ष न्यायाधीश भी दोहराया करते हैं।हालांकि यह मामला सामान्य देरी से इतर प्रतीत हुआ। मैं पूरी विनम्रता से कहना चाहता हूं कि यह मामला जोखिम से बचने का ज्यादा लगा। मसलन यह बहुत ज्यादा गड़बड़ लग रहा है इसे बाद के लिए छोड़ दो। चाहे जो भी हो कई राज्यों में 2019 के आम चुनाव के पहले चरण के मतदान एक रोज पहले हो चुके थे। पीठ ने अपने अंतरिम आदेश में कहा था कि निश्चित रूप से पारदर्शिता होनी चाहिए। उन्होंने हमें पारदर्शिता दी भी लेकिन वह सीलबंद लिफाफे में थी।

उन्होंने कहा कि हर दल को इन गोपनीय चुनावी बॉन्ड के जरिये मिलने वाले चंदे के बारे में निर्वाचन आयोग को 30 मई, 2019 तक जानकारी देनी होगी। यह तय करने का काम निर्वाचन आयोग पर छोड़ दिया गया कि इनका खुलासा कब, कैसे और कहां करना है। प्रभावी तौर पर देखा जाए तो उन्होंने गेंद निर्वाचन आयोग के पाले में डाल दी। चुनाव आयोग उन ब्योरों को दबा गया। जो काम करने में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश घबरा गए उसे सेवानिवृत्त अफसरशाह करेंगे, यह सोचना भी मूर्खता थी।

भय थोड़ा कठोर शब्द है लेकिन मैंने तो एक प्रचलित मुहावरे का ही इस्तेमाल किया है। हम चीन के दिग्गज नेता रहे तंग श्याओ फिंग के शब्द भी इस्तेमाल कर सकते हैं। सन 1988 में पेइचिंग में राजीव गांधी के साथ बैठक में उन्होंने चीन के साथ सीमा विवाद पर बात करने से यह कहते हुए इनकार कर दिया था कि, 'हमारी पीढ़ी में शायद उतनी बुद्धिमता नहीं है कि हम सीमा जैसे जटिल मुद्दे को हल कर सकें। इसलिए इसे भविष्य की किसी समझदार पीढ़ी के लिए छोड़ देते हैं और उस बारे में बात करते हैं जिस बारे में हम कर सकते हैं।' यह बात अधिक तार्किक प्रतीत होती है कि अप्रैल 2019 के अंतिम आदेश में ऐसे ही विचार नजर आए। सवाल यह है कि क्या अब न्यायाधीशों की ऐसी पीढ़ी आई है जिसमें वैसी बुद्धिमता हो। जब 2017-18 के बजट में तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली चुनावी बॉन्ड लाए थे तब उन्होंने कहा था कि यह केवल आंशिक सुधार है। उन्होंने कहा था कि यह चुनावी फंडिंग से काले धन को बाहर करने की दिशा में पहला कदम है। यह कहना उचित ही था क्योंकि उस वक्त तक अमीर व्यक्ति, कारोबारी, संपत्ति कारोबारी, खनन कारोबारी, अपराधी, तस्कर, ठग आदि कोई भी अपनी पसंद के राजनीतिक दलों को जमकर चंदा दे सकते थे। अब वे भारतीय स्टेट बैंक से बॉन्ड खरीद सकते थे, जाहिर है केवल वैध कमाई से ही।

इसमें एक और फायदा यह था कि इस बॉन्ड की मदद से दिए जाने वाले राजनीतिक चंदे पर कर राहत है। इससे राजनीतिक दलों को भी मदद मिली क्योंकि उन्हें मिलने वाली राशि कर रियायत वाली थी यानी यह वैध पैसा था। परंतु अगर यह पारदर्शिता की ओर पहला कदम था तो भी अगला कदम न उठाने की प्रवृत्ति ने हालात को और अधिक मुश्किल बना दिया।

दानदाताओं जो आमतौर पर कारोबारी होते हैं वे भारतीय स्टेट बैंक जाकर एक चेक या बॉन्ड के समकक्ष चुनावी बॉन्ड खरीद सकते हैं। वे इन्हें अपनी पसंद के राजनीतिक दल को दे सकते हैं। वह पार्टी उसे दिए गए बैंक खाते में जमा कर सकती है। दानदाता को किसी को यह बताने की आवश्यकता नहीं है उसने बॉन्ड किसे दिया है। पाने वाले को भी यह खुलासा करने की जरूरत नहीं है कि बॉन्ड किसे दिया गया।

ऐसे में पहला चरण जहां चुनावी चंदे को काले धन से सफेद की दिशा में लाता है, वहीं दूसरा कदम गोपनीयता सुनिश्चित करता है। मामला अभी भी ऐसा ही था कि पैसा पूरी तरह रुचि रखने वाले पक्षकारों के बीच अंधेरे में हस्तांतरित होता था और मतदाताओं को कभी पता नहीं चलता कि किसने, किसे कितना पैसा दिया। नागरिकों और संस्थानों भी यह पता नहीं चलता कि इस तरह के भुगतान से कोई निर्णय प्रभावित तो नहीं हुआ। कोई भी गोपनीय योगदान अभी भी शंकाओं को जन्म देगा और उसे रिश्वत माना जा सकता है। अब हालात पहले से अधिक बुरे हैं। पूरी तरह वैध चुनावी भ्रष्टाचार। मतदाता या नागरिकों को यह पता नहीं होता कि कौन किसे भुगतान कर रहा है कि और क्या इसकी वजह से कोई निर्णय लिए जा रहे हैं। मिसाल के तौर पर किसे पता कि किसी क्षेत्र मसलन स्टील क्षेत्र में अचानक शुल्क वृद्धि क्यों की गई जबकि हम इस संभावना को नकार नहीं सकते कि औद्योगिक समूह ऐसे बॉन्ड बड़ी मात्रा में खरीद रहे हैं।

इसके अलावा बाहर भले ही किसी को कुछ न मालूम हो लेकिन तंत्र यानी व्यवस्था को तो सब पता रहता है। आखिर सरकारी बैंक होने के नाते स्टेट बैंक को अच्छी तरह पता होता है कि किसने बॉन्ड खरीदे और किस राजनीतिक दल ने कितने बॉन्ड जमा किए। बॉन्ड क्रमांक मिलाकर आसानी से जानकारी निकाली जा सकती है कि कौन दोस्त है और कौन दुश्मन। ऐसे में उस वक्त की सरकार को यह अच्छी तरह पता होगा कि किसे पुरस्कृत करना है और किसे दंडित करना है।

अब आप समझ गए होंगे कि हम क्यों कह रहे हैं कि 1 अप्रैल, 2017 को हम चुनावी भ्रष्टाचार के खिलाफ 65 वर्ष पुरानी जंग हार गए और कैसे नए चुनावी बॉन्ड ने व्यवस्था को सुधारने के बजाय रिश्वत को वैधानिक बना दिया।

राजनीतिक वर्ग से हमारी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को देखते हुए किसी को यकीन नहीं होगा कि भाजपा सरकार आने वाले सुधारों के अपने वादे पर कायम रहेगी। वास्तव में जिस बात ने सबसे अधिक निराश किया वह था सर्वोच्च न्यायालय का वह रुख कि इस जटिल मुद्दे को आगे की किसी समझदार पीढ़ी पर छोड़ दिया जाए।

तब से पांच वर्ष बीत चुके हैं, भारत की चुनावी चंदा व्यवस्था अब इस 'सुधार' के पहले की तुलना में अधिक दोषपूर्ण हो गई है। क्या भारत देश के सबसे प्रतिष्ठित संस्थान पर यह भरोसा कर सकता है कि वह स्पष्टता लाएगा और इस दौरान अपनी गलती में सुधार करेगा?

जनसत्ता

Date:19-09-22

सिंहों के गढ़ में चीता

प्रमोद भार्गव

कभी-कभी कुछ विडंबनाएं एक नई अनुकूल स्थिति का निर्माण कर देती हैं। ऐसा ही कुछ मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले में स्थित कूनो-पालपुर उद्यान में देखने में आ रहा है, जिसे विकसित तो गुजरात के गिरवन में मौजूद सिंहों के लिए किया गया था, लेकिन यह जंगल अब अफ्रीकी चीतों का गढ़ बनने जा रहा है। इस उद्यान में अब कभी बब्बर शेर नहीं लाए जा सकेंगे। दरअसल, बब्बर शेर केवल गुजरात के गिर राष्ट्रीय उद्यान में हैं।इस प्रजाति को किसी महामारी या प्राकृतिक प्रकोप से बचाने की दृष्टि से भारत सरकार ने उन्हें एक नई जगह बसाने की दूरदर्शी योजना बनाई थी। इसके लिए 1992 में कूनो-पालपुर के आदिम जंगल को 'सिंह परियोजना' नाम से क्रियान्वित करने की मंजूरी दी गई। इसके लिए इस क्षेत्र के करीब तीन हजार वर्ग किलोमीटर इलाके में बसे विशेष सहरिया जनजाति बहुल उनतीस गांवों को विस्थापित किया गया। इन गावों में आदिकाल से रह रहे 1,545 परिवारों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ा। इनका आज भी उचित पुनर्वास नहीं हुआ है।हैरानी इस बात पर है कि लाचारों को तो एक झटके में जंगलों से खदेड़ दिया गया, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद मध्यप्रदेश को गुजरात के बब्बर शेर (एशियाटिक लायन) नहीं मिल सके। इसलिए मजबूरन मध्यप्रदेश सरकार ने कूनो-पालपुर राष्ट्रीय उद्यान में अफ्रीकी चीते बसाने में की योजना बनाई।

उस समय हुए गुजरात और मध्यप्रदेश सरकार के बीच अनुबंध के अनुसार उद्यान में शेरों के लिए आवासीय क्षेत्र विकसित होने के बाद गुजरात सरकार को शेर देने थे, पर सरकार कोई न कोई बहाना करके शेर देने के अनुबंध को टालती रही। जबकि करीब ढाई सौ करोड़ रुपए खर्च करके 2003 में उद्यान को सिंहों की प्रकृति के अनुसार विकसित कर लिया गया था। शेर नहीं मिले, तो शीर्ष न्यायालय में याचिका दायर की गई।चूंकि अनुबंध के अनुसार गुजरात सरकार को जवाब देना मुश्किल हुआ, तो उसने 'अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ' (आइयूसीएन) के दिशा-निर्देशों को ढाल बना लिया। इस संघ के पैंतीस मापदंड निर्धारित हैं, जिन्हें पूरा करने पर ही सिंहों को दूसरे स्थान पर बसाने का प्रावधान है। इनमें से कम समय में पूरे होने वाले कार्यों को मध्यप्रदेश सरकार ने पूरा कर लिया, जबकि लंबे समय के कार्यों को लेकर भरोसा जताया कि ये शेर आने के बाद पूरे कर लिए जाएंगे। पर गुजरात सरकार मापदंड पूरे करने के बाद ही शेर देने के लिए अड़ गई। गुजरात द्वारा सिंह संभवत: इसलिए नहीं दिए गए कि वहां पर्यटकों की आमद कम न हो जाए।

कूनो में छोड़े जाने के बाद चीते प्रजनन करने लगेंगे, तब भारत की धरती पर बिल्ली प्रजाति की पांच बड़ी प्रजातियां चहलकदमी करने लग जाएंगी। बाघ, शेर, तेंदुआ और हिम तेंदुआ, चार प्रजातियां भारत में पहले से हैं। अभी कूनो में तेंदुओं की बड़ी संख्या में उपस्थिति है ही, राजस्थान के रणथंभौर राष्ट्रीय उद्यान से बाघों की आमद कूनो में कभी-कभार दिखाई दे जाती है। 2006 में एक साथ छह बाघ दिखाई दिए थे। ये सभी बाघ रणथंभौर से पलायन कर कूनो आ गए थे।

कूनो का रहवास नामीबिया के प्राकृतिक रहवास की तरह है। इसके बावजूद नए वातावरण में बिल्ली प्रजाति के प्राणियों को बसाना आसान नहीं होता। दक्षिण अफ्रीका से ही दिल्ली के चिड़ियाघर में चार चीतों को लाकर बसाया गया था, लेकिन एक-एक कर चारों चीते मर गए। चिड़ियाघरों में पाले गए बाघ, सिंह या चीतों को खुले जंगलों में छोड़ा जाता है, तो इनके नरभक्षी हो जाने का खतरा भी बना रहता है, क्योंकि इनकी शिकार करने की क्षमता लगभग खत्म हो जाती है।इसीलिए कूनो में इनके आहार की सुविधा के लिए पेंच राष्ट्रीय उद्यान से लाकर सत्ताईस चीतल चीतों के नए बाड़े में छोड़ दिए गए हैं। हालांकि इस उद्यान में चीतल, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सूअर, खरगोश पहले से बड़ी संख्या में मौजूद हैं। दरअसल, ग्वालियर राज्य के राजपत्र के अनुसार लार्ड कर्जन ने तब के महाराजा माधवराव सिंधिया प्रथम को इस वनखंड में सिंहों के सरंक्षण और पुनर्वास की सलाह दी थी। 1904 में कर्जन शिवपुरी, मोहना और श्योपुर के जंगलों में शिकार करने आए थे, लेकिन उस समय तक यहां सिंह लुप्त हो चुके थे।

कर्जन की सलाह पर अमल करते हुए 1905 में डेढ़ लाख रुपए का वार्षिक बजट निर्धारित कर सिंहों के पुनर्वास की पहल इस जंगल में की गई। वन्य जीवन के जानकार अधिकारियों को सिंहों के पुनर्वास की जिम्मेदारी सौंपी गई। अधिकारियों ने पहले जूनागढ़ के नवाबों से सिंह लेने के प्रयास किए, लेकिन उन्होंने गुजरात सरकार की तरह सिंह देने से साफ इनकार कर दिया बाद में अधिकारी कर्जन का एक सिफारिशी पत्र लेकर इथियोपिया गए और दस सिंह शावक पानी के जहाज में बिठा कर मुंबई लाए। मगर मुंबई तक आते-आते दस में सात शावक ही बच पाए थे। इनमें तीन नर और चार मादा शेष बचे थे। इन शावकों को पहले ग्वालियर के चिड़ियाघर में पाला गया। वयस्क होने पर दो मादाओं ने पांच शावक पैदा किए। इन शावकों के बड़े होने पर आठ सिंह शिवपुरी जिले के सुल्तानगढ़ के जलप्रपात के पास बियाबान जंगल में छोड़े गए, लेकिन चिड़ियाघर के कृत्रिम और सुविधाजनक माहौल में पले और बड़े हुए ये सिंह वन्यजीवों का शिकार करने में अक्षम रहे। भूख के मिटाने के लिए इन्होंने पालतू मवेशियों और ग्रामीणों का शिकार शुरू कर दिया। 1910 से 1912 के बीच इन सिंहों ने एक दर्जन लोगों को मार डाला। इससे गांवों में हाहाकार मच गया।

तब ग्वालियर महाराज ने सिंहों को पकड़वा कर 1915 में श्योपुर के कूनो-पालपुर जंगल में बसाने का एक बार फिर असफल प्रयास हुआ। यहां भी इनकी आदमखोर प्रवृत्ति बनी रही। इन्हें फिर पकड़ने की कोशिशें हुईं लेकिन ये पकड़ में नहीं आए। बाद में इन्हें नीमच, झांसी, मुरैना और पन्ना में मार गिराए जाने की खबरें मिली। जब उस वक्त चीतों या सिंहों का पुनर्वास संभव नहीं हुआ, जबकि उस समय घनघेर जंगल थे और आहार के लिए वन्य प्राणी भी बड़ी संख्या में मौजूद थे, इसलिए यह शंका स्वाभाविक है कि ये सिंह जंगल में मुक्त विचरण के बाद विस्थापित किए गए आदिवासियों के जीवन के लिए ही कहीं संकट न बन जाएं।

विचित्र है कि वन और वन्य प्राणियों का आदिकाल से सरंक्षण करते चले आ रहे आदिवासियों को बड़ी संख्या में जंगलों से केवल इसलिए बेदखल कर दिया गया कि इनका जंगलों में रहना वन्य जीवों के प्रजनन, आहार और नैसर्गिक आवासन के मद्देनजर हितहारी नहीं है। इसी कथित जीवनदर्शन के आधार पर समूचे मध्यप्रदेश में आदिवासियों को कथित विकास और पर्यटन के बहाने खदेड़े जाने का सिलसिला जारी है।देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास जितना पुराना है, आदिवासियों को वनों से विस्थापित कर वन्यप्राणी अभयारण्यों की स्थापना का इतिहास भी लगभग उतना ही पुराना है। 1857 में मध्यप्रदेश के हिल स्टेशन पचमढ़ी की तलहटी में घने जंगलों में बसे गांव हर्राकोट के कोरकु आदिवासी मुखिया भूपत सिंह ने भी फिरंगियों के खिलाफ विद्रोह का झंडा फहराया था। प्रतिकार स्वरूप अंग्रेजों ने भूपत सिंह को हर्रा कोर्ट से दो साल के संघर्ष के बाद विस्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली। फिर इस जंगल से आदिवासियों की बेदखली के बाद इस वनखंड को 1859 में 'बोरी आरक्षित वन' घोषित कर दिया गया। तभी से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सरकारें और वनाधिकारी विदेशियों द्वारा खींची गई लकीर के फकीर बने हुए हैं।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:19-09-22

चीते का स्वागत

संपादकीय

जो चीज हम गंवा देते हैं, वह फिर बहुत मुश्किल से मिलती है। जब देश आजाद हुआ था, तब उसके साथ-साथ देश के जंगलों को भी चीता से आजादी मिल गई थी। चिड़ियाघरों में भी धीरे-धीरे चीते खत्म हुए और भारत चीताहीन हो गया। लगभग 13 वर्षों के ठोस वैश्विक प्रयासों के बाद 17 सितंबर, 2022 को चीते का देश की धरती पर पुन: पदार्पण हुआ है। चीते के लिए उसी मध्य प्रदेश को चुना गया है, जो बाघों के लिए सबसे सुरक्षित सिद्ध हुआ है। मध्य प्रदेश में बाघों की संख्या सबसे ज्यादा 526 है, अब वहां का कूनो उद्यान आठ चीतों का घर हो गया है। दूर नामीबिया से लाए गए चीते लगभग तीस दिन की देखरेख के बाद जंगल में छोड़ दिए जाएंगे। अब यह वन अधिकारियों और वनवासियों पर निर्भर है कि वे मिलकर चीतों को विकास और विस्तार का माहौल दें। बहुत चाक-चौबंद होकर चीतों की रक्षा करने की जरूरत है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने जन्मदिन पर स्वयं चीतों को जंगल के बाड़े में छोड़ा है और दुनिया हमारी ओर गौर से देख रही है।

ध्यान रहे, चीतों को बचाने के लिए यह विशेष अभियान है और यह नाकाम नहीं होना चाहिए। टाइगर रिजर्व की शुरुआत पचास साल पहले तब हुई थी, जब बाघों की तादाद घटकर 1,800 के करीब पहुंच गई थी। उससे पहले 1947 में लगभग 40,000 बाघों का अनुमान लगाया गया था। मतलब आजादी के बाद भी बाघों का खूब कायरता के साथ शिकार किया गया। वैसे, टाइगर रिजर्व से फायदा यह हुआ कि बाघों की तादाद पिछली सदी के आखिरी दशक में 3,500 के करीब पहुंच गई, लेकिन फिर ढिलाई शुरू हो गई, तो साल 2006 में बाघों की संख्या लगभग वहीं पहुंच गई, जहां टाइगर रिजर्व से पहले थी। आज देश में टाइगर रिजर्व की संख्या नौ से बढ़कर 52 हो गई है। शिकारियों को रोका गया है, देखभाल बढ़ी है, तो देश में बाघों की संख्या बढ़कर 2,900 के करीब पहुंच गई है। हालांकि, इनमें से भी 1,900 के करीब बाघ ही टाइगर रिजर्व में निवास करते हैं। बाघ संरक्षण में हम बीच में ढीले पड़ गए थे, लेकिन चीता के मामले में अगर हम ढीले पडे और उनकी संख्या फिर घटी, तो बाहर से हमें चीता देने को कोई फिर तैयार नहीं होगा। बहुत दुख की बात है, कभी अपने देश में लाखों की तादाद में चीते थे, लेकिन आज दुनिया भर में महज 7,100 चीते ही बचे हैं। एशिया में केवल ईरान में 12 से 40 के बीच चीते बचे हैं। चीते ज्यादातर पूर्वी और दक्षिण अफ्रीका में बचे हैं। लगभग 4,000 चीते अंगोला, बोत्सवाना, मोजाम्बिक, नामीबिया, दक्षिण अफ्रीका और जाम्बिया में निवास करते हैं। केन्या और तंजानिया में लगभग 1,000 चीते हैं।

हमारी संस्कृति में वन्यजीवों को अधिकता की स्थिति में ही मारने की इजाजत थी। बाद में जिन संस्कृतियों का समावेश हुआ, उनमें वन्यजीवों को अनुत्पादक माना गया, अत: उनसे जंगल छीनकर खेत व बगीचों को सुरक्षित बनाने पर काम हुआ। मुगलों और अंग्रेजों के समय शिकारियों को सम्मान दिया गया। ध्यान रहे, देश के अंतिम तीन वन्य चीतों को सरगुजा के महाराजा ने 1947 में मौत की नींद सुलाया था। अब हमें वन्यजीवों के प्रति बहुत उदार बनना ही पड़ेगा। कभी लाखों हाथी थे, अब महज 27,312 बच गए हैं। शेर महज 674 बच गए हैं। जहां जो वन्यजीव प्रेम से रह जाए, उसे सहेज लेना होगा। जैसे गुजरात के गिर में शेर सिमटकर खुश हैं, वैसे ही कूनो में अगर चीते गुलजार हो जाएं, तो यह हमारी मानवता की बड़ी सफलता होगी।

THE TIMES OF INDIA

Date:19-09-22

Funding The Future

GoI reverting to earlier funding rule for research bodies is welcome. But India spends too little on science

TOI Editorials

GoI's commendable move to reverse a procedural rule that was choking the flow of funds to national research institutes – both the rule and its reversal were reported in TOI– will be met with relief by scientists. In March, a new workflow rule that mandated zero-balance accounts for each project replaced the system where institutes' central accounts allocated funds. Opening these accounts was time-consuming. Also, advantages of a large pool of money coming into a central account were lost. For example, interest earned from a central corpus helped researchers pay for administrative overheads, which are not always covered by grants. Rules must not tie up researchers in unnecessary procedures that affect productivity. Perhaps, the new system was meant to free researchers from controls of university procedures but pre-change consultation and a phased shift to the new system would have been better.

The bigger problem for R&D in India is too little spending. Per capita gross expenditure on R&D (GERD), as shown by Niti Aayog's latest India Innovation Index report, is just $43 (the total spend is 0. 7% of GDP) against $1,800 in US (total spend 3. 4% of GDP) and $325 (total spend 2. 4% of GDP) in China. Even per capita GERD in emerging economies is far ahead – Brazil ($173) and South Africa ($105). Clearly, too little has been spent on R&D despite India's economic transformation over 30-plus years.

To begin with, the apex National Research Foundation announced in the 2020 Union budget must start working. It was promised a Rs 50,000 crore outlay and a spending timeline of five years. One of the administrative questions that needs answering is how this body will work with existing central funding agencies like DST, DBT, CSIR, SERB, ICAR and ICMR.

THE ECONOMIC TIMES

Date:19-09-22

India Has to Get Its Engagement Face On

ET Editorials

Last week's Shanghai Cooperation Organisation (SCO) summit in Samarkand, Uzbekistan, underscored the complex position India finds itself in. Rather than juggle multiple identities and interests, New Delhi needs to develop an approach that is consistent, proactive and progressive. India's assumption of SCO and G20 leadership in 2023 provides the perfect opportunity.

India's participation in regional groupings such as SCO is important. It gives New Delhi space to address issues critical to regional stability. However, these platforms can be fragile. For instance, as leaders

reaffirmed their strong commitment to fight terrorism in the Samarkand Declaration, China said it will veto a US-India proposal to blacklist a Pakistan-backed terrorist.

India's engagement with Russia is underpinned by its dependence for military supplies and need to ensure Moscow's neutrality on India-China. But Moscow's growing dependence on Beijing can undermine this. Beijing has been building SCO and even BRICS (Brazil, Russia, India, China, South Africa) as anti-West platforms. The choice of new members and invitees underscores this impression. India has pushed back on this. Now it needs to be proactive in balancing the compulsions of its neighbourhoods and its growing relationship with the rest of the world.

Safeguarding national interests can no longer be seen as serving only India's own interests. It should build wider partnerships on issues of common concern such as climate change, future pandemics, energy transition, protection and promotion of democracy to develop a pathway to deal with a churning world order. For that New Delhi needs to consider trade-offs to build a partnership that gives voice to countries that get caught in big power games.

THE HINDU

Date:19-09-22

Era of war is over

India did well to caution Vladimir Putin over the Ukraine war

Editorial

Compared to its relatively low-key past, the Summit of the Shanghai Cooperation Organisation's (SCO) Council of Heads of State in Samarkand took place in the cross-hairs of international attention. Apart from the SCO's new agreements on regional engagement, discussions among the eight members including four Central Asian states (Kazakhstan, Kyrgyzstan, Tajikistan and Uzbekistan) focused on inducting Iran as a member, broadening the SCO dialogue partners to West and South Asia, and on trade, tourism and counter-terrorism in the region. However, more focus was on the bilateral meetings on the sidelines, as this was the first such major conference that Russian President Vladimir Putin attended since the Ukraine war, as well as part of the first visit abroad by Chinese President Xi Jinping since the COVID-19 pandemic and Taiwan tensions. Prime Minister Narendra Modi's attendance was equally meaningful, given that it was the first time he met Mr. Putin since the war, and Mr. Xi since the standoff at the LAC, in 2020. This was also the first time he came face to face with Pakistan Prime Minister Shehbaz Sharif, and speculation was rife that he would hold meetings with India's adversaries. While the meetings with Mr. Sharif or Mr. Xi did not materialise, western capitals focused on his Putin meeting. Mr. Modi's opening comment to Mr. Putin, that the "era of war" has ended, has been read as an "admonition" of Russia's war in Ukraine. However, it would be wrong to read Mr. Modi's engagement with Mr. Putin as any kind of "public shaming", but rather an expression of the concern over the war, something that Mr. Putin said he

understands. A day before, Mr. Putin had also said to Mr. Xi that he understood China's concerns, indicating Russia's realisation of the need to effect a ceasefire and dialogue.

India now comes into prominence as Chair of the SCO, and is making preparations for next year's SCO summit ahead of the G-20 summit in New Delhi. India needs to ensure the participation of all SCO members including China and Pakistan, despite the tensions, which will entail some diplomatic elbow grease by External Affairs Minister S. Jaishankar in the next few months, beginning this week at the UN General Assembly. India's pitch to the SCO for connectivity with the Eurasian region hinges on its development of Chabahar port through Iran and traversing U.S. sanctions, while still competing with the China-Pakistan backed transit routes through Gwadar. On terrorism, India will have to ensure the SCO walks the talk on building a new consolidated list of terrorist groups, an area where it is frequently thwarted by China. Meanwhile, New Delhi will also have to balance its ties, keeping western partners in the Quad and other groupings reassured, especially as the polarisation between the U.S.-EU coalition and a Russia-China-led combine continues to grow.